अजय तिवारी, जे.

कुलदीप बिश्नोई- **याचिकाकर्ता**

बनाम

अध्यक्ष, हरियाणा विधान सभा एवं

अन्य- **प्रतिवादी**

सी.डब्ल्यू.पी. 2010 का क्रमांक 14194

20 दिसंबर 2010

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 191 और 226-हरियाणा विधान सभा (दल-बदल के आधार पर सदस्यों की अयोग्यता) नियम, 1986-अध्यक्ष, विधान सभा अपनी पार्टी के किसी अन्य पार्टी में विलय की मांग करने वाले एक पार्टी के सदस्यों के आवेदन स्वीकार कर रहे हैं-उस पार्टी के अध्यक्ष सदस्यों की अयोग्यता के लिए प्रार्थना कर रहे हैं- स्पीकर द्वारा उत्तरदाताओं को जवाब दाखिल करने के लिए स्थगन देना - क्या उच्च न्यायालय के पास याचिकाओं की सुनवाई के दौरान हस्तक्षेप करने का अधिकार क्षेत्र है - माना जाता है, हां - उत्तरदाताओं द्वारा जवाब दाखिल करने के लिए समय के विस्तार के प्रक्रियात्मक पहलू से याचिकाकर्ता के मूल अधिकार को पराजित किया जा रहा है - अध्यक्ष को निर्देश देते हुए याचिकाएं स्वीकार की गईं चार महीने की अवधि के भीतर याचिकाओं पर निर्णय करना।

माना गया कि भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 4 के तहत एक आदेश पारित करते समय, अध्यक्ष को विशुद्ध रूप से न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्य करने का आदेश नहीं दिया जाता है और इस हद तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार एक आदेश दिया गया है। विभाजन/विलय को मान्यता देना उस व्यक्ति के लिए बाध्यकारी नहीं है जो इसका पक्षकार नहीं है, यह याचिकाकर्ता के तर्कों के विरुद्ध होगा। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ये दोनों मामले भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के अनुच्छेद 191 और अनुच्छेद 6 के तहत याचिकाओं से उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि पैराग्राफ 4 के तहत एक आदेश अनिवार्य रूप से पैराग्राफ 6 के तहत निर्णय के अधीन होगा। इस प्रकार, 9 नवंबर, 2009 और 10 नवंबर, 2009 के आदेशों को चुनौती खारिज कर दी गई है।

(पैरा 10)

एसपी जैन, वरिष्ठ। याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता धीरज जैन के साथ अधिवक्ता

मोहन जैन, अति. प्रतिवादी संख्या 1,2 और 8 के वकील कमल नेहरा के साथ भारत के सॉलिसिटर जनरल हरभगवान वालिया, वरिष्ठ। अरुण वालिया के साथ वकील, प्रतिवादी क्रमांक 3 से 7 के वकील।

अजय तिवारी, जे.

(i) इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने 9 नवंबर, 2009 और 10 नवंबर, 2009 (क्रमशः अनुबंध पी-4 और पी-7) के आदेशों को चुनौती दी है, साथ ही प्रतिवादी संख्या 1 को एक निर्देश जारी करने की मांग की है। उत्तरदाताओं क्रमांक 3 से 7 के विरुद्ध उनके द्वारा दायर पांच अयोग्यता याचिकाओं पर तीन महीने की अवधि के भीतर निर्णय करना। याचिकाकर्ता का दावा है कि निजी उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 ने हरियाणा जनहित कांग्रेस (बीएल) के बैनर तले चुनाव लड़ा था, जिसमें याचिकाकर्ता अध्यक्ष और नेता भी थे। यह भी कहा गया है कि हरियाणा विधानसभा के चुनाव सितंबर-अक्टूबर 2009 में हुए थे। 9 नवंबर, 2009 को, शुरू में उत्तरदाताओं संख्या 3 से 6 ने उत्तरदाताओं संख्या 1 को एक आवेदन दिया था जिसमें दावा किया गया था कि उन्होंने विलय का निर्णय लिया है। हरियाणा जनहित कांग्रेस (बीएल) पार्टी ने भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 4 के प्रावधानों के अनुसार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के साथ विलय की स्वीकृति के लिए प्रार्थना की। उसी तारीख को, प्रतिवादी संख्या 7 द्वारा एक समान आवेदन दायर किया गया था जिसमें उन्होंने कहा था कि वह भी उक्त निर्णय में एक पक्ष थे, लेकिन अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण चंडीगढ़ नहीं पहुंच सके और इसलिए उन्होंने एक अलग आवेदन दायर किया था। आक्षेपित आदेश, अनुलग्नक पी-4 और पी-7 के अनुसार, प्रतिवादी संख्या 1 ने विलय को स्वीकार कर लिया।

(iii) याचिकाकर्ता ने आगे दावा किया कि उसने उत्तरदाताओं नंबर 1 को आवेदन और अनुस्मारक भेजा और उनसे निजी उत्तरदाताओं द्वारा दिए गए आवेदनों की प्रतियां, साथ ही उस पर पारित आदेशों की प्रतियां प्रदान करने का अनुरोध किया। हालाँकि, यह उपलब्ध नहीं कराया गया। इसके बाद, 9 दिसंबर, 2009 को, याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची और हरियाणा विधान सभा (दल-बदल के आधार पर सदस्यों की अयोग्यता) नियम, 1986 (संक्षेप में "नियम") के साथ पठित अनुच्छेद 191 के तहत याचिका दायर की। हरियाणा विधान सभा के सदस्य के रूप में उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 की अयोग्यता के लिए। याचिका में आगे कहा गया है कि उपरोक्त दस्तावेजों की आपूर्ति के लिए उनके आवेदन के जवाब में, याचिकाकर्ता को 9 दिसंबर, 2009 के पत्र के माध्यम से उस प्रावधान की जानकारी देने के लिए कहा गया था जिसके तहत उक्त आवेदन कायम करने योग्य था। याचिकाकर्ता ने 17 दिसंबर, 2009 को एक विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया। इसके बाद, 1 जनवरी, 2010 को याचिकाकर्ता को उपरोक्त दस्तावेज प्रदान किए गए। याचिकाकर्ता का यह भी मामला है कि दिसंबर 2009 से मार्च 2010 की अवधि के दौरान, उसे उसके द्वारा दायर की गई पांच याचिकाओं के भाग्य के संबंध में प्रतिवादी नंबर 1 से कोई नोटिस, सूचना या दस्तावेज नहीं मिला। इसके बाद याचिकाकर्ता ने 20 अप्रैल, 2010 को अयोग्यता याचिकाओं की फाइलों का निरीक्षण किया, जिसमें निम्नलिखित तथ्य सामने आए।

हालाँकि याचिकाएँ 9 दिसंबर, 2009 को दायर की गई थीं, उत्तरदाताओं संख्या 1 ने प्रतिवादी-विधायकों (प्रतिवादी संख्या 3 से 7) को केवल 22 दिसंबर, 2009 को नोटिस जारी किया, जिससे उन्हें अपना जवाब दाखिल करने के लिए तीन सप्ताह का समय दिया गया;

(ii) उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 को भेजे गए सभी पंजीकृत पत्र 12 जनवरी, 2010 को बिना डिलीवर किए वापस प्राप्त हो गए थे;

(iii) 14 जनवरी 2010 को, उत्तरदाताओं संख्या 1 ने उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 को एक सप्ताह के भीतर उनकी टिप्पणियों के लिए फिर से नोटिस जारी किया;

(iv) 14 जनवरी 2010 को भेजे गए नोटिस पुनः 3 फरवरी को बिना डिलीवर हुए वापस प्राप्त हो गए। 2010;

(v) प्रतिवादी संख्या 1 ने 9 फरवरी 2010 को फिर से सभी याचिकाओं में पहले जैसा ही आदेश जारी किया;

(vi) यह भी ध्यान में आया कि उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 ने 4 मार्च, 2010 को आवेदन दायर किया, जिसमें उनके खिलाफ दायर अन्य अयोग्यता याचिकाओं में सेवा पूरी होने तक मामलों को स्थगित करने की प्रार्थना की गई;

(vii) 5 मार्च, 2010 को, उत्तरदाताओं संख्या 1 ने, आवेदनों पर कोई नोटिस जारी किए बिना, आवेदनों की अनुमति दी और उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 को जवाब दाखिल करने के लिए छह सप्ताह का समय दिया;

(viii) इसके बाद 31 मार्च, 2010 को, उत्तरदाताओं नंबर 1 को अंतिम अवसर के रूप में उत्तरदाताओं नंबर 3 से 7 तक जवाब दाखिल करने के लिए दो सप्ताह का अतिरिक्त समय दिया गया। हालांकि, उक्त उत्तरदाताओं में से किसी ने भी कोई जवाब दाखिल नहीं किया;

(ix) 7 अप्रैल को। 2010, उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 ने प्रतिवादी संख्या 1 के समक्ष आवेदन दायर किया और अपने उत्तर दाखिल करने के लिए बारह सप्ताह का समय देने की प्रार्थना की। प्रतिवादी संख्या 1 ने अंतिम अवसर के पहले के आदेश की अनदेखी करते हुए, आवेदन की अनुमति दी और उत्तर दाखिल करने के लिए आठ सप्ताह का अतिरिक्त समय दिया। और मामले को 18 जून, 2010 तक के लिए स्थगित कर दिया;

(x) प्रतिवादी नंबर 1 ने न तो याचिकाकर्ता को आवेदनों का कोई नोटिस जारी किया और न ही आदेश पारित करने से पहले उसे इसके बारे में सूचित किया।

(4) यह भी कहा गया है कि 21 अप्रैल, 2010 को तत्काल रिट याचिका दायर की गई थी और यह तथ्य मीडिया में व्यापक रूप से रिपोर्ट किया गया था। 21 अप्रैल, 2010 को यानी याचिकाकर्ता द्वारा फाइलों का निरीक्षण करने के बाद, उत्तरदाताओं नंबर 1 ने याचिकाकर्ता को पत्र भेजकर सूचित किया कि याचिकाएं 18 जून, 2010 को सुनवाई के लिए तय की गई हैं। याचिकाकर्ता अपने वकील के साथ प्रतिवादी नंबर 1 के समक्ष उपस्थित हुआ। उक्त तिथि को, लेकिन चूंकि प्रतिवादी नंबर 1 को स्टेशन से बाहर जाना

पड़ा, इसलिए मामले को 16 जुलाई, 2010 तक के लिए स्थगित कर दिया गया। उक्त तिथि पर, याचिकाकर्ता प्रतिवादी नंबर 1 के समक्ष उपस्थित हुआ। उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 ने आवेदन दायर कर प्रार्थना की जवाब दाखिल करने के लिए आठ सप्ताह का अतिरिक्त समय मांगा, जिसका याचिकाकर्ता के वकील ने विरोध किया। हालाँकि, उत्तरदाताओं नंबर 1 ने आवेदनों को स्वीकार कर लिया और उत्तरदाताओं नंबर 3 से 7 को जवाब दाखिल करने के लिए अंतिम अवसर के रूप में चार सप्ताह का अतिरिक्त समय दिया और मामले को 16 अगस्त, 2010 तक के लिए स्थगित कर दिया। इस प्रकार, यह कहा गया है कि प्रतिवादी नंबर 1 निजी उत्तरदाताओं को जवाब दाखिल करने के लिए बार-बार स्थगन दे रहा था और प्रतिवादी नंबर 1 की यह कार्रवाई उसे दी गई न्यायिक भूमिका का उल्लंघन थी।

(5) लिखित बयानों में, आक्षेपित आदेशों, अनुलग्नकों पी-4 और पी-7 का बचाव किया गया है, जैसा कि उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 को जवाब दाखिल करने के लिए समय देने में प्रतिवादी संख्या 1 की कार्रवाई है। इसके अलावा, एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई है कि इस प्रकृति के प्रक्रियात्मक पहलू में हस्तक्षेप करना इस न्यायालय के लिए अस्वीकार्य है।

(6) मामले पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ने से पहले, दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 4 और 6 के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 122 और 212 को फिर से प्रस्तुत करना लाभदायक होगा, जो इस प्रकार हैं-

बचाव के आधार पर अयोग्यता विलय के मामले में लागू नहीं होगी—(1) सदन के किसी सदस्य को पैराग्राफ 2 के उप-पैराग्राफ (1) के तहत अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा जहां उसकी मूल राजनीतिक पार्टी का किसी अन्य राजनीतिक पार्टी में विलय हो जाता है और वह दावा करता है कि वह और उसके मूल राजनीतिक दल के कोई अन्य सदस्य:-

(ए) ऐसे अन्य राजनीतिक दल के सदस्य बन गए हैं या, जैसा भी मामला हो, ऐसे विलय से बने नए राजनीतिक दल के सदस्य बन गए हैं; या

(बी) ने विलय को स्वीकार नहीं किया है और एक अलग समूह के रूप में कार्य करने का विकल्प चुना है, और ऐसे विलय के समय से, ऐसे अन्य राजनीतिक दल या नए राजनीतिक दल या समूह, जैसा भी मामला हो, को राजनीतिक दल माना जाएगा। पैराग्राफ 2 के उप-पैराग्राफ (1) के प्रयोजनों के लिए वह किससे संबंधित है और इस उप-पैराग्राफ के प्रयोजनों के लिए उसका मूल राजनीतिक दल है।

(2) इस पैराग्राफ के उप-पैराग्राफ (1) के प्रयोजनों के लिए, किसी सदन के सदस्य के मूल राजनीतिक दल का विलय हुआ हुआ माना जाएगा। और केवल तभी, जब संबंधित विधायक दल के कम से कम दो-तिहाई सदस्य इस तरह के विलय के लिए सहमत हों।

(6) दलबदल के आधार पर अयोग्यता के प्रश्नों पर निर्णय- (1) यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या सदन का कोई सदस्य इस अनुसूची के तहत अयोग्यता के अधीन हो गया है, तो प्रश्न को सभापति के निर्णय के लिए भेजा जाएगा या जैसा भी मामला हो, ऐसे सदन के अध्यक्ष और उनका निर्णय अंतिम होगा:

बशर्ते कि जहां प्रश्न यह उठता है कि क्या सदन का अध्यक्ष या अध्यक्ष ऐसी अयोग्यता के अधीन हो गया है, तो प्रश्न को सदन के ऐसे सदस्य के निर्णय के लिए भेजा जाएगा जिसे सदन इस संबंध में चुन सकता है और उसका निर्णय अंतिम होगा।

(2) इस अनुसूची के तहत किसी सदन के सदस्य की अयोग्यता के संबंध में किसी भी प्रश्न के संबंध में इस पैराग्राफ के उप-पैराग्राफ (1) के तहत सभी कार्यवाही को अनुच्छेद 122 के अर्थ के तहत संसद में कार्यवाही माना जाएगा। हो सकता है, अनुच्छेद 212 के अर्थ के अंतर्गत किसी राज्य के विधानमंडल में कार्यवाही हो।

अदालतें संसद की कार्यवाही की जांच नहीं करेंगी- (1) प्रक्रिया की किसी भी कथित अनियमितता के आधार पर संसद की किसी भी कार्यवाही की वैधता पर सवाल नहीं उठाया जाएगा। कोई भी अधिकारी या संसद सदस्य, जिसमें इस संविधान द्वारा या इसके तहत संसद में प्रक्रिया या व्यवसाय के संचालन को विनियमित करने, या व्यवस्था बनाए रखने की शक्तियां निहित हैं, उनके द्वारा किए गए अभ्यास के संबंध में किसी भी अदालत के क्षेत्राधिकार के अधीन नहीं होगा।

शक्तियां:

212. न्यायालयों द्वारा विधानमंडल की कार्यवाहियों की जांच नहीं की जाएगी-(1) किसी राज्य के विधानमंडल में किसी भी कार्यवाही की वैधता पर प्रक्रिया की किसी कथित अनियमितता के आधार पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

(2) किसी राज्य के विधानमंडल का कोई भी अधिकारी या सदस्य, जिसमें विधानमंडल में प्रक्रिया या व्यवसाय के संचालन को विनियमित करने, या व्यवस्था बनाए रखने के लिए इस संविधान द्वारा या इसके तहत शक्तियां निहित हैं, किसी भी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन नहीं होगा। उनके द्वारा उन शक्तियों के प्रयोग का सम्मान'

(7) अनुलग्नक पी-4 और पी-7 को चुनौती के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि इन आदेशों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि प्रतिवादी नंबर 1 ने इस मुद्दे को पहले से तय कर लिया है। उन्होंने प्रकाश सिंह बादल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य पर भरोसा किया है, (1), जिसमें इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इस प्रकार कहा था-

“40. भले ही यह तर्क के लिए स्वीकार किया जा सकता है कि स्पीकर के समक्ष आवेदन, अनुलग्नक पी-1, दाखिल करने से याचिकाकर्ताओं की अयोग्यता के बारे में एक सवाल खड़ा हो गया और स्पीकर ने

मामले को जब्त कर लिया, आदेश, जहां तक प्रतिवादी संख्या 7 का सवाल है, उनके द्वारा पारित अनुबंध पी-3 अप्रभावी होगा। कानून का सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी दी गई कार्यवाही पर पारित आदेश किसी भी प्रभावित व्यक्ति को बाध्य नहीं करेगा, जो न तो उन कार्यवाही में पक्षकार था और न ही उसे पारित करने से पहले सुनवाई का अवसर दिया गया था। यह इसी सिद्धांत पर था कि हरियाणा राज्य बनाम विनोद कुमार, 1986 (1)89 पन एल.आर. मामले में इस न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ ने। 222 ने कलेक्टर एग्रेरियन के आदेश को उन व्यक्तियों के खिलाफ अप्रभावी माना जो इससे प्रभावित थे, लेकिन न तो कार्यवाही में पक्षकार थे और न ही सुनवाई का कोई अवसर दिया। बावनवाँ संशोधन दलबदल को रोकने के लिए अधिनियमित किया गया है, जिसका आवश्यक अर्थ यह है कि यह मुख्य रूप से उन राजनीतिक दलों के लाभ के लिए अधिनियमित किया गया है जिनके सदस्य सदन का गठन करते हैं, हालांकि मोटे तौर पर कोई भी नागरिक इसके प्रावधानों को लागू कर सकता है। किसी भी राजनीतिक दल की स्वेच्छा से सदस्यता छोड़ने से ऐसी पार्टी प्रभावित होगी और इसी तरह पैरा 6 के तहत पारित कोई भी आदेश प्रभावित होगा। नतीजतन, किसी भी राजनीतिक दल पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला पैरा 6 के तहत पारित आदेश उसके खिलाफ अप्रभावी होगा यदि उसे कोई नोटिस जारी नहीं किया जाता है। इसे सुनने का अवसर प्रदान किया गया।

पैरा 3 के तहत दावा करने पर, यह माना जाएगा कि याचिकाकर्ताओं ने स्वेच्छा से शिरोमणि अकाली दल की सदस्यता छोड़ दी है, जिसके टिकट पर वे चुने गए थे। इसलिए, वे सदन के सदस्य होने से अयोग्य घोषित किये जाने के उत्तरदायी थे। यदि उनके बचाव को पैरा 3 के तहत स्वीकार किया जाना है और जैसा कि पैरा 6 के तहत परिकल्पित किया गया है, निर्णय लिया जाना है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के लिए संबंधित राजनीतिक दल के अध्यक्ष को नोटिस देने की आवश्यकता होगी। ऊपर पहले ही विस्तार से चर्चा की जा चुकी है कि अध्यक्ष पैरा 6 के तहत कार्य करते समय एक न्यायाधिकरण होगा और उसके समक्ष कार्यवाही अर्ध-न्यायिक प्रकृति की होगी। इसलिए, संबंधित पक्ष को नोटिस जारी किए बिना या सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना उस पैराग्राफ के तहत उसके द्वारा पारित कोई भी आदेश, ऐसे हिस्से के खिलाफ अप्रभावी होगा। जैसा कि आदेश पारित करने से पहले, अनुबंध पी-3, न तो राजनीतिक दल और न ही मामले में रुचि रखने वाले किसी अन्य व्यक्ति को सुना गया था, यह किसी को भी बाध्य नहीं करेगा और इस अर्थ में, इसे शुरू से ही शून्य आदेश कहा जा सकता है। इसलिए, दोनों आधारों पर, अध्यक्ष द्वारा आदेश, अनुलग्नक पी-3 की अनदेखी करना उचित था। हालाँकि, 4 जुलाई 1986 के आदेश, अनुलग्नक पी-8 को रद्द करना होगा क्योंकि श्री अमरिन्दर सिंह का यह दावा कि उन्हें अलग समूह का नेता चुना गया है, सदस्यों की अयोग्यता के प्रश्न के बाद ही निपटाया जा सकता है। उस समूह का निपटारा कर दिया गया है और पैरा 3 के तहत उनकी रक्षा को बरकरार रखा गया है।"

(8) याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने जगजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2) पर भी भरोसा किया है, विशेष रूप से पैरा 70 और 72 के निम्नलिखित भाग, जो इस प्रकार हैं-

"70. xx xx xx xx. हमें लगता है कि स्पीकर सही हैं. इस तरह का विभाजन, यदि अनुच्छेद 3 के प्रयोजन के लिए वैध माना जाता है, तो कानून का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। आवश्यकता मूल राजनीतिक दल के स्थानीय या राज्य विंग के विभाजन की नहीं है, बल्कि मूल राजनीतिक दल के विभाजन की है, जैसा कि दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 1 (सी) में परिभाषित है, जिसे पैराग्राफ 2 (1) में स्पष्टीकरण के साथ पढ़ा जाता है कि ' किसी सदन के निर्वाचित सदस्य को उस राजनीतिक दल, यदि कोई हो, से संबंधित माना जाएगा, जिसके द्वारा उसे ऐसे सदस्य के रूप में चुनाव के लिए उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने नियमों के नियम 7 के खंड (बी)(3) पर भरोसा किया है, जिसका प्रभाव निम्नलिखित है-

"7(3)(बी). जहां ऐसा सदस्य किसी विधायक दल का है और ऐसी याचिका उसके नेता द्वारा नहीं की गई है, तो ऐसे नेता को भी ऐसी प्रतियों की प्राप्ति के सात दिनों के भीतर, या अध्यक्ष द्वारा निर्धारित अतिरिक्त अवधि के भीतर ऐसा करना होगा। पर्याप्त कारण की अनुमति के लिए, उस पर लिखित रूप में अपनी टिप्पणियाँ अध्यक्ष को अग्रेषित करें।"

(10) मेरी राय में, पैराग्राफ 4 के तहत एक आदेश पारित करते समय, अध्यक्ष को पूरी तरह से एक न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्य करने का आदेश नहीं दिया गया है और इस हद तक ऊपर दिए गए पैरा में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियां हैं, जो निर्धारित करती हैं विभाजन/विलय को मान्यता देने का आदेश उस व्यक्ति पर बाध्यकारी नहीं है जो इसका पक्षकार नहीं है, यह याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के तर्कों के विरुद्ध होगा। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ये दोनों मामले अनुच्छेद 191 और अनुसूची (सुप्रा) के अनुच्छेद 6 के तहत याचिकाओं से उत्पन्न हुए हैं। इस प्रकार, मेरी सुविचारित राय में, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि पैराग्राफ 4 के तहत एक आदेश आवश्यक रूप से पैराग्राफ 6 के तहत एक निर्णय के अधीन होगा। इस प्रकार, आदेश, अनुलग्नक पी-4 और पी-7 को चुनौती खारिज कर दी जाती है।

(11) दूसरी प्रार्थना के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने मायावती बनाम मार्कंडेय चंद, (3), और विशेष रूप से उसके पैराग्राफ 103 पर भरोसा किया है, जो निम्नलिखित प्रभाव पर है-

"103. लेकिन मैं यह जोड़ना चाहता हूं कि प्रत्येक अध्यक्ष के लिए विधायकों या सांसदों की अयोग्यता की कार्यवाही के निपटान के लिए प्रासंगिक नियमों में एक समय-सारणी तय करना नितांत आवश्यक है।

मेरी राय में, ऐसी सभी कार्यवाही समाप्त की जानी चाहिए और याचिकाएं फ़ाइल में लेने की तारीख से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर आदेश पारित किए जाने चाहिए।

विद्वान वकील ने राम बिलास शर्मा बनाम अध्यक्ष, हरियाणा विधानसभा, चंडीगढ़ और अन्य पर भरोसा जताया है, (4) और विशेष रूप से पैरा 3,4, 5 जो निम्नलिखित प्रभाव वाले हैं-

“3. यह एक स्वीकृत मामला है कि याचिकाकर्ता और दूसरा प्रतिवादी मूल राजनीतिक दल भाजपा द्वारा स्थापित हरियाणा विधानसभा के लिए चुने गए थे। 17 जुलाई, 1991 को दूसरे प्रतिवादी ने विधान सभा अध्यक्ष को लिखा कि राजनीतिक दल (भाजपा) के विधायक दल में विभाजन के परिणामस्वरूप भाजपा (के) नाम से एक और विधायक दल अस्तित्व में आया है। . उन्होंने आगे कहा कि वैचारिक मतभेदों के कारण उन्होंने भाजपा (के) के नाम और शैली में नया विधायक दल बनाने का फैसला किया है। दूसरे प्रतिवादी द्वारा अध्यक्ष को लिखे गए पत्र को आक्षेपित आदेश अनुलग्नक पी-7 में पुनः प्रस्तुत किया गया। उसमें यह कहीं नहीं कहा गया है कि मूल राजनीतिक दल में राष्ट्रीय स्तर पर या भाजपा की हरियाणा राज्य इकाई में कोई विभाजन हुआ था। पत्र को पढ़ने से साफ पता चलता है कि वैचारिक मतभेदों के कारण उन्होंने (दूसरे प्रतिवादी) ने बीजेपी (के) के नाम और शैली में एक नया विधायक दल बनाने का फैसला किया है। हमारे विचार में भारत के संविधान की 10वीं अनुसूची के पैराग्राफ 3 में निहित स्पष्ट प्रावधानों के मद्देनजर इस तरह के तर्क को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

4. पैराग्राफ 1 (बी) विधानमंडल दल को एक समूह के रूप में परिभाषित करता है जिसमें पैराग्राफ 2, 3 और 4 के प्रावधानों के अनुसार सदन के कुछ समय के लिए उस राजनीतिक दल के सदस्य शामिल होते हैं। पैराग्राफ 1 (सी) के अनुसार मूल किसी सदन के सदस्य के संबंध में राजनीतिक दल वह राजनीतिक दल है जिससे वह पैराग्राफ 2 के उप पैराग्राफ 1 के प्रयोजन के लिए संबंधित है। पैराग्राफ 2 (ए) सदन के किसी सदस्य को अयोग्य बना देता है यदि उसने स्वेच्छा से अपनी सदस्यता छोड़ दी है ऐसी राजनीतिक पार्टी. अनुच्छेद 3, अनुच्छेद 3 के अपवाद की प्रकृति में है। यह इस प्रकार है -

'जहां सदन का कोई सदस्य यह दावा करता है कि वह और उसके विधानमंडल दल के अन्य सदस्य एक ऐसे गुट का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह का गठन करते हैं जो उसके मूल राजनीतिक दल में विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है और ऐसे समूह में कम से कम एक शामिल है- ऐसे विधायक दल के एक तिहाई सदस्य- (ए) उसे पैराग्राफ 2 के उप-पैराग्राफ (1) के तहत अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा।

इस प्रकार, पैराग्राफ 3 को आकर्षित करने के लिए मूल राजनीतिक दल में विभाजन होना चाहिए और उस राजनीतिक दल के विधायक दल के एक तिहाई सदस्य उस गुट का प्रतिनिधित्व करने वाले समूह का गठन करते हैं जो मूल राजनीतिक दल से अलग हो जाता है, फिर केवल वही सदस्य उस गुट के लोग 10वीं अनुसूची के पैराग्राफ 2 के उप-पैरा 1 के तहत अयोग्यता के पात्र नहीं हैं। मौजूदा मामले में, दूसरे प्रतिवादी

का यह दावा नहीं है कि उसकी मूल राजनीतिक पार्टी का राष्ट्रीय स्तर पर या राज्य स्तर पर विभाजन हुआ था। 17 जुलाई, 1991 को स्पीकर को लिखे पत्र में उन्होंने केवल यह दावा किया था कि वैचारिक मतभेदों के कारण वह एक अलग विधायक दल बनाना चाहते हैं. पैराग्राफ 3 को आकर्षित करने के लिए मुख्य और आवश्यक घटक अर्थात् मूल राजनीतिक दल में विभाजन की वकालत या दावा दूसरे प्रतिवादी द्वारा अध्यक्ष को लिखे गए अपने पत्र में नहीं किया गया है। मूल राजनीतिक दल में विभाजन के अभाव में, उस राजनीतिक दल का कोई भी सदस्य अलग विधायक दल बनाने का दावा नहीं कर सकता।

विधायक दल कोई अलग इकाई नहीं है. यह मूल राजनीतिक दल के भीतर ही एक शाखा है। इसलिए, हमारी राय है कि दूसरा प्रतिवादी यह दावा नहीं कर सकता कि उसने एक अलग विधायक दल बनाया है और वह अयोग्य नहीं हुआ है क्योंकि वह अकेले ही मूल राजनीतिक दल भाजपा के एक तिहाई से अधिक विधायक दल का सदस्य है। इसलिए, हमारी राय है कि 10वीं अनुसूची का पैराग्राफ 3 दूसरे प्रतिवादी के मामले में आकर्षित नहीं होता है और इसलिए, दूसरे प्रतिवादी ने मूल राजनीतिक दल अर्थात् भाजपा की सदस्यता छोड़ दी है जिसने उसे एक के रूप में स्थापित किया था। विधान सभा का चुनाव लड़ने के लिए उम्मीदवार. इसलिए, हमारी राय है कि 10 अप्रैल, 1992 के अध्यक्ष के आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और दूसरे प्रतिवादी को विधानसभा का सदस्य होने से अयोग्य घोषित कर दिया गया है। हम तदनुसार हरियाणा विधानसभा के अध्यक्ष के आदेश को रद्द करते हैं और दूसरे प्रतिवादी को हरियाणा विधानसभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य घोषित करते हैं। दूसरे प्रतिवादी की अयोग्यता अध्यक्ष के आदेश की तारीख यानी 10 अप्रैल, 1992 से लागू होगी।

तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है और दूसरे प्रतिवादी को 10 अप्रैल, 1992 से हरियाणा विधानसभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य घोषित किया जाता है और आवश्यक परिणाम भुगतने होंगे। हालाँकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(13) दोनों पक्षों ने किहोतो होलोहन बनाम ज़चिल्हू और अन्य पर भी भरोसा किया है, (5) जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने इस प्रकार कहा: -

“111. परिणाम में, हम तर्क (ई) और (एफ) पर कायम हैं:

कि दसवीं अनुसूची, अयोग्यता के लिए और विवादित अयोग्यताओं के न्यायनिर्णयन के लिए अतिरिक्त अनुदान (एसआईसी आधार) प्रदान करने में, एक गैर-न्यायसंगत संवैधानिक क्षेत्र बनाने का प्रयास नहीं करती है। ऐसे विवादों को सुलझाने की शक्ति न्यायिक शक्ति के रूप में अध्यक्ष या सभापति में निहित है।

दसवीं अनुसूची का पैराग्राफ 6(1), जहां तक यह अध्यक्षों/सभापतियों के निर्णय को अंतिम रूप देने का प्रयास करता है, वैध है। लेकिन अनुच्छेद 6(1) में सन्निहित वैधानिक अंतिमता की अवधारणा संविधान

के अनुच्छेद 136,226 और 227 के तहत न्यायिक समीक्षा को कम या निरस्त नहीं करती है, जहां तक संवैधानिक आदेशों के उल्लंघन, दुर्भावना, प्राकृतिक न्याय के नियमों के गैर-अनुपालन पर आधारित कमजोरियां हैं। विकृति, चिंतित हैं, जो कि दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6(2) में डीमिंग प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 122(1) और 212(1) के समान छूट को आकर्षित करता है, जैसा कि केशव सिंह मामले में समझा और समझाया गया है ताकि कार्यवाही की वैधता को मात्र से बचाया जा सके। प्रक्रिया की अनियमितता. 'संसद में कार्यवाही मानी जाए' या 'किसी राज्य की विधायिका में कार्यवाही' शब्दों को ध्यान में रखते हुए, डीमिंग प्रावधान तदनुसार कल्पना के दायरे को सीमित करता है।

दसवीं अनुसूची के तहत शक्तियों का प्रयोग और कार्यों का निर्वहन करते समय अध्यक्ष/सभापति दसवीं अनुसूची के तहत अधिकारों और दायित्वों का निर्णय करने वाले न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करते हैं और उस क्षमता में उनके निर्णय न्यायिक समीक्षा के अधीन होते हैं। हालाँकि, दसवीं अनुसूची में संवैधानिक अनुसूची को ध्यान में रखते हुए न्यायिक समीक्षा में अध्यक्षों/सभापतियों द्वारा निर्णय लेने से पहले के किसी भी चरण को शामिल नहीं किया जाना चाहिए। संवैधानिक इरादे और न्यायिक शक्ति के भंडार की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, किसी भी कार्रवाई की अनुमति नहीं है, किसी भी अंतरिम हस्तक्षेप के लिए एकमात्र अपवाद अंतरिम अयोग्यता या निलंबन के मामले हैं जिनके गंभीर, तत्काल और अपरिवर्तनीय नतीजे और परिणाम हो सकते हैं।

(14) दूसरी ओर, प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने रवि एस. नाइक बनाम भारत संघ और अन्य पर भरोसा जताया है, (6), जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार कहा था- (15) श्री सेन का कहना है कि खलप द्वारा अध्यक्ष के समक्ष दायर की गई याचिकाएं नियम 6 के उप-नियम (5) के खंड (ए) की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करती हैं, क्योंकि उक्त याचिका में संक्षिप्त जानकारी नहीं है। उन भौतिक तथ्यों का विवरण जिन पर याचिकाकर्ता (खलप) भरोसा कर रहा था और इसके अलावा नियम 6 के उप-नियम (5) के खंड (बी) के प्रावधानों का भी अनुपालन नहीं किया गया क्योंकि याचिकाओं के साथ प्रतियां नहीं थीं। दस्तावेज़ी सबूत जिस पर याचिकाकर्ता भरोसा कर रहा था और व्यक्तियों के नाम और पते और ऐसे प्रत्येक व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी की सूची। यह भी प्रस्तुत किया गया कि दलीलों के सत्यापन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता में निर्धारित तरीके से याचिकाओं का सत्यापन भी नहीं किया गया और इस प्रकार नियम 6 के उप-नियम (6) का भी अनुपालन नहीं हुआ और इसके मद्देनजर नियम 7 के उप-नियम (2) के मद्देनजर उक्त कमजोरियों के कारण याचिकाएं खारिज की जा सकती हैं। हम श्री सेन के उक्त तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। अयोग्यता नियम उस प्रक्रिया को विनियमित करने के लिए बनाए गए हैं जिसका पालन किया जाना है। संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6 के उप-पैराग्राफ (1) के तहत उन्हें प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने के लिए अध्यक्ष द्वारा। इसलिए, अयोग्यता नियम प्रकृति

में प्रक्रियात्मक हैं और इसका कोई भी उल्लंघन प्रक्रिया में अनियमितता माना जाएगा जो कि किहोटो होलोहन मामले में इस न्यायालय द्वारा बताए गए पैराग्राफ 6 के उप-पैराग्राफ (2) के मद्देनजर न्यायिक जांच से मुक्त है। . इसके अलावा, पैराग्राफ 6 के उपपैराग्राफ (1) के तहत अध्यक्ष द्वारा पारित आदेशों के संबंध में न्यायिक समीक्षा का क्षेत्र, जैसा कि किहोटो होलोहन मामले में इस न्यायालय द्वारा माना गया है, संवैधानिक आदेशों के उल्लंघन, दुर्भावनापूर्ण, गैर-अनुपालन तक ही सीमित है। प्राकृतिक न्याय के नियमों के साथ. हम श्री सेन के इस तर्क को कायम रखने में असमर्थ हैं कि अयोग्यता नियमों का उल्लंघन संवैधानिक आदेशों का उल्लंघन है। ऐसा करके हम नियमों को संविधान के प्रावधानों के दर्जे तक बढ़ा देंगे जो कि अनुमति योग्य नहीं है। चूंकि अयोग्यता नियम दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 8 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करते हुए अध्यक्ष द्वारा बनाए गए हैं, इसलिए उनकी स्थिति संविधान के अधीन है और उन्हें संविधान के प्रावधानों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। इसलिए, उन्हें संवैधानिक आदेश नहीं माना जा सकता है और अयोग्यता नियमों का कोई भी उल्लंघन अनुच्छेद 6 के उप-पैराग्राफ (1) में निहित अंतिम खंड के मद्देनजर अध्यक्ष के आदेश की न्यायिक समीक्षा के लिए आधार नहीं देता है। किहोटो होलोहान मामले में इस न्यायालय द्वारा दसवीं अनुसूची की व्याख्या की गई।

आधुनिक प्रशासनिक कानून में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्हें "कार्रवाई में निष्पक्ष खेल" के रूप में परिभाषित किया गया है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है: वे निष्पक्ष सुनवाई के मूल तत्वों का गठन करते हैं, जिनकी जड़ें निष्पक्ष खेल और न्याय के लिए मनुष्य की सहज भावना में हैं, जो किसी विशेष जाति या देश का संरक्षण नहीं है बल्कि सभी पुरुषों द्वारा साझा किया जाता है। ।" प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में पारित न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्य करने वाले प्राधिकारी का आदेश प्रक्रियात्मक रूप से अधिकारातीत है और इसलिए, न्यायिक त्रुटि से ग्रस्त है। यही कारण है कि दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6 (1) द्वारा अध्यक्षों/सभापतियों के निर्णय को अंतिम रूप दिए जाने के बावजूद ऐसा निर्णय प्राकृतिक न्याय के नियमों का अनुपालन न करने के आधार पर न्यायिक समीक्षा के अधीन है। लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को लागू करते समय, यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'वे अपरिवर्तनीय नहीं हैं बल्कि लचीले हैं' और वे सही मूड में नहीं हैं और उन्हें कानूनी शिकंजे में नहीं डाला जा सकता है। प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताओं का अनुपालन किया गया है या नहीं, इस पर किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए।

(15) विद्वान वकील ने भी मायावती के मामले (सुप्रा) पर भरोसा किया है, लेकिन उसके पैरा 102 का संदर्भ दिया गया है जो निम्नलिखित प्रभाव पर है-

102. इस शीर्ष के तहत आग्रह किया गया एक तर्क यह है कि अध्यक्ष ने कार्यवाही में अनावश्यक देरी करके विकृत कार्य किया है। यद्यपि विद्वान वरिष्ठ वकील ने अपने तर्कों के दौरान स्पष्ट रूप से कहा कि वह अध्यक्ष के खिलाफ पूर्वाग्रह या व्यक्तिगत दुर्भावना का आरोप नहीं लगा रहे हैं, उनके द्वारा दिए गए लिखित प्रस्तुतीकरण में यह इस प्रकार कहा गया है:

'माननीय अध्यक्ष ने याचिकाओं पर शीघ्रता से निर्णय न लेकर और भाजपा को पैरा 3 के तहत उत्तरदाताओं की रक्षा के उद्देश्यों के लिए समर्थन जुटाने का समय देकर संवैधानिक जनादेश के विपरीत कार्य किया है?

स्पष्ट रूप से दिए गए और ऊपर संदर्भित बयान के मद्देनजर उक्त प्रस्तुतिकरण स्वीकार्य नहीं है। किसी भी स्थिति में, केवल इसलिए कि सुनवाई समाप्त होने में देरी हो रही है, आदेश को विकृत नहीं कहा जा सकता। अध्यक्ष ने इस प्रश्न को ठीक से तैयार किया है कि क्या उत्तरदाताओं द्वारा आरोप लगाया गया विभाजन 21 अक्टूबर, 1997 को हुआ था और क्या यह स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा समर्थित था। इस न्यायालय को सीमित न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए केवल यह देखना है कि क्या अध्यक्ष द्वारा निकाले गए निष्कर्ष उस अर्थ में विकृत हैं जिस अर्थ में इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में 'विकृति' की अभिव्यक्ति को समझा गया है। मैं यह स्वीकार करने में असमर्थ हूं कि कानून के मामले में, कार्यवाही पूरी होने में देरी अपने आप ही उनके द्वारा पारित आदेश को रद्द कर देगी।''

(16) उन्होंने आगे जगजीत सिंह के मामले (सुप्रा) पर भरोसा जताया है, लेकिन अदालत का ध्यान पैरा 11 की ओर आकर्षित किया है जो इस प्रकार है-

"11। अध्यक्ष, सदस्यों को अयोग्य घोषित करने की शक्ति का प्रयोग करते समय, एक न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करता है और यद्यपि इस प्रकार पारित आदेशों की वैधता पर इस न्यायालय या उच्च न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार में सवाल उठाया जा सकता है, न्यायिक समीक्षा का दायरा संविधान पीठ द्वारा निर्धारित अनुसार सीमित है। किहोतो होलोहन बनाम ज़ाचिल्हू में। आदेशों को अधिकारातीत या दुर्भावनापूर्ण या बाहरी और अप्रासंगिक विचारों के आधार पर शक्ति के रंगीन प्रयोग के आधार पर चुनौती दी जा सकती है। यह आदेश प्राकृतिक न्याय के नियमों का उल्लंघन होगा।''

(17) उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने एस.बी. में राजस्थान उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए फैसले पर भरोसा जताया है। सिविल रिट याचिका संख्या 4991/2010, जसवन्त सिंह गुर्जर बनाम माननीय अध्यक्ष, राजस्थान विधान सभा, पर 3 सितंबर, 2010 को फैसला सुनाया गया। उस मामले में, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रार्थनाएँ की गईं:-

यह माननीय न्यायालय प्रतिवादी संख्या 1 माननीय अध्यक्ष, राजस्थान राज्य विधान सभा, जयपुर को याचिकाकर्ता आवेदक के आवेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दे सकता है, जिसमें याचिका संख्या 1/2009 को उसके निर्णय के लिए जारी करने की मांग की गई है। माननीय उच्च न्यायालय सुनवाई की अगली तारीख 3 मई, 2010 (अंतिम तारीख 26 फरवरी, 2010) और उसके बाद जरूरत पड़ने पर दिन-प्रतिदिन के आधार पर कार्यवाही संचालित करेगा।

(19) यदि माननीय न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि माननीय अध्यक्ष इस उद्देश्य के लिए नियुक्त समय के भीतर निर्देश का पालन नहीं करेंगे, तो कृपया याचिका संख्या 1/2009 को वापस लेने का आदेश दिया जाए। माननीय न्यायालय और उसके बाद राजिन्द्र सिंह राणा बनाम स्वामी प्रसाद मौर्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय की गई कानून की स्थिति के मद्देनजर इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्णय लिया गया।''

(18) यह उस संदर्भ में था कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने रवि एस नाइक के मामले (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए इस प्रकार कहा-

“14. उपरोक्त मामले में भी शीर्ष अदालत ने विशेष रूप से कहा कि न्यायिक समीक्षा में अध्यक्षों/सभापतियों द्वारा निर्णय लेने से पहले के किसी भी चरण को शामिल नहीं किया जाना चाहिए। यह एक स्वीकृत तथ्य है कि याचिका माननीय अध्यक्ष के समक्ष लंबित है और यह अध्यक्ष द्वारा निर्णय लेने का प्रारंभिक चरण है और इस प्रकार इस स्तर पर यह न्यायालय अध्यक्ष को इस याचिका का नोटिस जारी नहीं कर सकता है। इस न्यायालय के लिए इस याचिका का नोटिस स्पीकर को जारी करना उचित नहीं है, जो संवैधानिक पदाधिकारियों में से एक है। इस प्रकार, याचिका विफल हो जाती है और खारिज किये जाने योग्य है।”

(19) उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया है कि अध्यक्ष द्वारा शक्ति का प्रयोग संविधान के अनुच्छेद 122 और 212 की सुरक्षा का हकदार होगा और इस संदर्भ में, उन्होंने अमरिंदर सिंह बनाम विशेष समिति, पंजाब पर भरोसा रखा है। विधान सभा एवं अन्य (7).

ऊपर दिए गए निर्णयों के साथ पढ़े गए संवैधानिक प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भले ही दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6 के तहत कार्यवाही को न्यायिक समीक्षा से प्रतिरक्षा नहीं कहा जा सकता है, फिर भी अदालतें इस क्षेत्र में सख्त सावधानी के साथ प्रवेश करेंगी।

(21) उत्तरदाताओं के विद्वान वकील ने आग्रह किया है कि अंतरिम चरण में, न्यायालयों के लिए कोई समीक्षा क्षेत्राधिकार उपलब्ध नहीं है, और भी अधिक जब समीक्षा की मांग की जाती है जिसे केवल अनिवार्य रूप से प्रक्रियात्मक मामले कहा जा सकता है। मैंने उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 का प्रतिनिधित्व करने वाले वरिष्ठ अधिवक्ता श्री हरभगवान वालिया से पूछा कि क्या ऐसी पूर्ण छूट उस मामले तक

विस्तारित होगी जहां एक अध्यक्ष विधानसभा के पूरे कार्यकाल के लिए निर्णय में प्रवेश नहीं करता है और उन्होंने इसे स्वीकार किया है ऐसी चरम स्थिति में, न्यायालय की मध्यस्थता अस्वीकार्य नहीं हो सकती, लेकिन उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान स्थिति इतनी गंभीर नहीं है। यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक समीक्षा की शक्तियों/प्रतिरक्षा पर ऐसी सभी चर्चा दो बुनियादी सिद्धांतों के अधीन है; सबसे पहले, न्याय न केवल किया जाना चाहिए बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए; और दूसरी बात यह कि कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी ऊंचा क्यों न हो - इस मामले में प्रतिवादी नंबर 1 - 'इसके बावजूद कि उसे संसदीय परंपराओं में बहुत उच्च दर्जा और बहुत सम्मान की स्थिति प्राप्त है और वह औचित्य और निष्पक्षता का अवतार है' - इससे ऊपर नहीं हो सकता कानून। इस संबंध में जगजीत सिंह के मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों का संदर्भ दिया गया है, जो निम्नलिखित प्रभाव वाली हैं-

“84. अलग होने से पहले हमारे सामने रखा गया एक और पहलू विचारणीय है. हालाँकि, सबसे पहले, हम यह बताना चाहते हैं कि अध्यक्ष को संसदीय परंपराओं में बहुत उच्च दर्जा और बहुत सम्मान का स्थान प्राप्त है। औचित्य और निष्पक्षता का प्रतीक होने के नाते, उन्हें यह निर्णय लेने का कार्य सौंपा गया है कि किसी सदस्य को अयोग्य ठहराया गया है या नहीं। किहोतो होलोहन निर्णय में विभिन्न महान सांसदों को अध्यक्ष की निष्पक्षता में विश्वास की ओर इशारा करते हुए देखा गया है और वह सभी दलों या राजनीतिक विचारों से ऊपर हैं। किहोतो होलोहन मामले में दसवीं अनुसूची की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखने के लिए अध्यक्ष के उच्च पद को एक आधार माना गया है।

निस्संदेह, हमारी संवैधानिक योजना में अध्यक्ष को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। अध्यक्ष का पद उत्कृष्ट योग्यता और निष्पक्षता वाले लोगों द्वारा धारण किया गया है और किया गया है। देश में किसी विशेष अध्यक्ष के प्रति अनादर का कोई मतलब न रखते हुए, केवल हाल के दिनों की कुछ घटनाओं के आधार पर, राजनीतिक प्रभाव वाले कुछ मुद्दों पर निष्पक्षता के मामले में विश्वास को लेकर कुछ सवाल उठाए गए हैं, जिनका निर्णय अध्यक्ष द्वारा किया जाता है। एक न्यायाधिकरण के रूप में उनकी क्षमता में। आग्रह किया गया है कि यदि इस पर अंकुश नहीं लगाया गया तो इसका असर अंततः अध्यक्ष के उच्च पद पर पड़ सकता है। ”

(22) एक तीसरे परिणाम पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है, अर्थात कुछ मामलों में, एक प्रक्रियात्मक पहलू भी एक वास्तविक अधिकार को पराजित कर सकता है। बेशक, सबसे अच्छा उदाहरण ऑडी अल्टरम पार्टम का नियम है जो अनिवार्य रूप से एक प्रक्रियात्मक पहलू है लेकिन इतना मौलिक महत्व है कि यह स्वयं एक बुनियादी मूल अधिकार का प्रतीक है। यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि वर्तमान

सरकार ने शुरू में प्रतिवादी संख्या 3 से 7 को अपने साथ जोड़ने के बाद ही वैधता अर्जित की थी। अगर वे साथ नहीं आते तो वर्तमान सरकार नहीं बन पाती. इस कारण से, संविधान के अनुच्छेद 191 के तहत इन याचिकाओं पर निर्णय केवल कानून तक ही सीमित नहीं किया जा सकता है, बल्कि लोकतंत्र की आवश्यक अवधारणा तक सीमित नहीं किया जा सकता है। यदि यह पाया जाता है कि प्रतिवादी संख्या 3 से 7 को अयोग्य ठहराया गया है, तो सरकार का अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जाएगा। इस प्रकार, यह तर्क देना कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप पर रोक लगा दी है, ऐसे पूर्ण शब्दों में नहीं कहा जा सकता जैसा कि उत्तरदाताओं के विद्वान वकील द्वारा वकालत की गई है। कोई भी न्यायालय नियमों के नियम 7 के खंड (बी)(3) के प्रावधानों से अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है, जो स्वयं प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा तैयार किए गए हैं, और जिसके अनुसार जवाब दाखिल करने का समय एक सप्ताह निर्धारित किया गया है। . इसका मतलब यह नहीं है कि प्रतिवादी नंबर 1 किसी भी परिस्थिति में समय नहीं बढ़ा सकता है, लेकिन केवल नियमों के तहत परिकल्पित समय सीमा को ध्यान में रखना होगा। यह अब किसी भी विवाद के दायरे से परे है कि प्रतिवादी नंबर 1 संविधान की दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6 के तहत एक याचिका पर निर्णय लेते समय एक आवश्यक न्यायिक कार्य करता है। वास्तव में, किहोतो होलोहन के मामले (सुप्रा) के पैरा 95 में। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:-

वर्तमान मामले में, अनुच्छेद 6(1) के तहत विवादित अयोग्यता पर निर्णय लेने की शक्ति मुख्य रूप से न्यायिक जटिलता की है।

(23) जहां तक भारत के संविधान के अनुच्छेद 122 और 212 के तहत सुरक्षा की दलील का संबंध है, उक्त तर्क को किहोटो होलोहन के मामले (सुप्रा) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विशेष रूप से निम्नलिखित शब्दों में खारिज कर दिया गया था: -

“97 इसके अलावा, 1986 में जब दसवीं अनुसूची पेश की गई थी, तब भी संविधान ने अनुच्छेद 191 (आई) और 102 के तहत सदस्यों की अयोग्यता के विवादों के समाधान के संचालन में अनुच्छेद 122 या 212 को लागू करने का कोई इरादा नहीं दिखाया। 1). अत्यंत गंभीर प्रावधान का तात्पर्य यह है कि अयोग्यता की कार्यवाही वास्तव में सदन के समक्ष नहीं है; लेकिन केवल विशेष रूप से नामित प्राधिकारी के रूप में अध्यक्ष के समक्ष। अनुच्छेद 6(1) के तहत निर्णय सदन का निर्णय नहीं है, न ही यह सदन द्वारा अनुमोदन के अधीन है। निर्णय सदन से स्वतंत्र रूप से संचालित होता है। स्वीकार्य प्रावधान अपनी रचना से अपनी ही शक्ति से आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए, दसवीं अनुसूची के पैराग्राफ 6 (1) के तहत शक्ति का प्रयोग करने वाले अध्यक्ष या सभापति के निर्णय की न्यायिक जांच से अनुच्छेद 122 और 212 के तहत कोई छूट नहीं है।

इस रिट याचिका में, मुख्य रूप से ऊपर दिए गए घटनाओं के अनुक्रम पर भरोसा करते हुए प्रतिवादी नंबर 1 के खिलाफ दुर्भावना के आरोप भी लगाए गए हैं। मैंने इसे याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के समक्ष रखा कि यदि दुर्भावना के आरोपों को प्रमाणित माना जाता है तो क्या स्थिति होगी, और क्या इसका मतलब यह होगा कि यह न्यायालय या तो किसी अन्य पदाधिकारी को नामांकित करेगा या प्रतिवादी नंबर 1 के स्थान पर खुद को प्रतिस्थापित करेगा और फिर भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के साथ पठित अनुच्छेद 191 के तहत याचिकाओं पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ें? इस गतिरोध का सामना करते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने कहा है कि वह इस स्तर पर दुर्भावना के आरोपों पर जोर नहीं देंगे, लेकिन प्रार्थना की कि किसी भी मामले में कथित निष्क्रियता याचिकाकर्ता को निर्देश जारी करने की दूसरी राहत का हकदार बनाती है। आसानी से तथ्यों पर वापस आते हुए, यह पता चला है कि प्रतिवादी नंबर 1 ने लगभग साढ़े आठ महीने की अवधि में उत्तरदाताओं नंबर 3 से 7 तक जवाब दाखिल करने के लिए छह अवसर दिए। प्रतिवादी संख्या 1, 21 अप्रैल, 2009 को वर्तमान रिट याचिका दायर करने के बाद भी, जिसमें शीघ्र निर्णय के लिए प्रार्थना की गई थी, प्रतिवादी संख्या 3 से 7 को अतिरिक्त समय देते रहे। जहां तक याचिकाकर्ता का संबंध है, यह एक था उनके दावे को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया। उद्धृत निर्णयों के तथ्यों को देखने से पता चलता है कि रवि एस. नाइक के मामले (सुप्रा) में, याचिका पर एक महीने के भीतर निर्णय लिया गया था, जगजीत सिंह के मामले (सुप्रा) में, याचिका का निर्णय 17 दिनों के भीतर किया गया था और मायावती के मामले में (सुप्रा), याचिका पर चार महीने के भीतर निर्णय लिया गया। हाथ में लिया गया मामला, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है, एक स्पष्ट विरोधाभास प्रस्तुत करता है। यह। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याचिकाकर्ता का अपना मुक़दमा तय करने का वास्तविक अधिकार उत्तरदाताओं संख्या 3 से 7 द्वारा उत्तर दाखिल करने के लिए समय के विस्तार के प्रक्रियात्मक पहलू से पराजित हो रहा है। नतीजतन, इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि वर्तमान यह एक ऐसा मामला है जहां याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिकाओं के परीक्षण के दौरान भी न्यायिक हस्तक्षेप उचित है, और प्रतिवादी नंबर 1 को एक निश्चित समय सीमा के भीतर उक्त याचिकाओं पर फैसला करने का निर्देश जारी करता है।

(25) परिणामस्वरूप, इस रिट याचिका को अनुमति दी जाती है और प्रतिवादी नंबर 1 को निर्देश दिया जाता है कि वह भारत के संविधान की दसवीं अनुसूची के साथ पढ़े गए अनुच्छेद 191 और कानून के अनुसार नियमों के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिकाओं पर अंतिम रूप से फैसला करे। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने से चार माह की अवधि।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेज़ी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा।

पारस चौधरी

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

फ़रीदाबाद, हरियाणा